Chap-7

सप्तम अध्याय

युगीन परिवेश और हिन्दी-गुजराती के भ्रमरगीत

सप्तम् अध्याय

युगीन परिवेश और हिन्दी-गुजराती के भ्रमरगीत

पिछले अध्याय में हम 'भ्रमरगीत काव्य में भक्ति एवं दार्शनिकता' पर विचार कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत काव्य में प्रतिबिंबित युगीन परिवेश का विश्लेषण कर लेना हमारा अभिप्रेत है। युगीन परिस्थितियों का साहित्य में प्रतिबिंबन बहुत ही स्वाभाविक है। साहित्य स्रष्टा अपने युग से निरपेक्ष नहीं रह सकता। वह चाहे लोकधर्मी साहित्य की रचना कर रहा हो चाहे अध्यात्मपरक, वह किसी प्रकार युग के प्रभाव से बच नहीं सकता। युग की परिस्थितियां उसके साहित्य में अभिव्यक्ति पाती हैं और उसी में साहित्य की गरिमा भी है। इस तथ्य को हम मध्ययुगीन भ्रमरगीत काव्य के परिप्रेक्ष्य में भी देख सकते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुगल सम्राट अकबर का शासन चल रहा था। उसके शासनकाल में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के अधिक निकट आने लगे थे। अकबर बड़ा दूरदर्शी सम्राट था। मुगल साम्राज्य की नींव दृढ़ करने के लिए उसने हिन्दुओं के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित किया। कभी-कभी वह स्वयं भी हिन्दुओं के आचार-व्यवहार का अनुसरण करता था। इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से शान्ति का युग था। हिन्दुओं को अपने धार्मिक कृत्य करने की स्वतंत्रता थी। उन्हें भी बड़े-बड़े राजकीय पद प्राप्त थे। समाज अनेक जातियों एवं विभिन्न वर्गों में विभक्त था।

एक ओर प्राचीन वैष्णव धर्म अपने आचार-विचार तथा भक्ति-भावना को प्राधान्य देता हुआ आगे बढ़ रहा था। दूसरी ओर बौद्ध धर्म अपने विकृत रूप में जनता के मध्य व्याप्त था। महायान और शैव साधनाओं के सम्मिश्रण से नाथ-पंथ का जन्म हो चुका था। इसके अतिरिक्त जन-जीवन में अनेक बाह्याचार तथा वामाचार भी प्रचलित थे। वाममार्गी सिद्धों की साधना आचार हीन कामवासना में डूबी हुई थी। तंत्र-मंत्र और जादू-टोना आदि के द्वारा भी भोली जनता को प्रभावित किया जाता था। इस प्रकार कहीं नाथ पंथियों का स्वर ऊंचा था तो कहीं हठ योगियों की

आवाज । ब्रह्मवाद और मायावाद का ढोल पीटकर पेट भरनेवालों की भी कमी नहीं थी । कहीं वैष्णव भक्ति और सूफी प्रेमतत्व की आवाज बुलन्द थी तो कहीं निर्गुणवादी सन्त मत पनप रहा था । शंकर के अद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टाद्वैत वाद, वल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद तथा निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद की धारा भी बह रही थी । सन्त मत के अनुयायी सहज साधना में विश्वास करते थे । इस पर भी शरीर शुद्धि पर अवश्य बल दिया जाता था । भक्त कवियों पर नाथ संप्रदाय के प्रभाव के विषय में डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है - "यह संप्रदाय काल क्रम से हिन्दी भाषी जन समुदाय को बहुत दूर तक प्रभावित कर सकता था । कबीरदास, सूरदास और जायसी की रचनाओं से जान पड़ता है कि यह संप्रदाय उन दिनों बड़ा प्रभावशाली रहा होगा ।"

दक्षिण भारत के वैष्णव आन्दोलनों का प्रचार उत्तर भारत में भी बहुमुखी प्रतिभा के साथ हो चुका था । इनके भक्ति प्रचार से जन जीवन में अभिनव आनन्द और उत्साह की लहर व्याप्त हो गयी । आराध्य के रूप में राम और कृष्ण के अवतारी रूपों के प्रति जनता का आकर्षण बढ़ता गया । शील, शक्ति और सौन्दर्य युक्त मुरली-मनोहर गोपालकृष्ण की लीलाओं का गान करती हुई जनता भक्ति भाव में आत्मविभोर हो गयीं । राम और कृष्ण की भक्ति-भावना में कर्म-काण्ड को भी स्थान दिया गया । महा प्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान के भजन कीर्तन के साथ ही अष्टयाम पूजा का भी उपक्रम रक्खा । इस प्रकार चंचल मन को एकाग्र करने के लिए भगवान के अवतारी रूप का सशक्त, तथा सरल संबल प्रदान किया गया ।

सूरदास ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य होने के कारण अधिकांश पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । आचार्य बल्लभ ने ज्ञान और योग में विश्वास करते हुए भी मानव-सहज दुर्बलताओं को दृष्टि समक्ष रखकर भक्ति मार्ग को ही प्रधानता दी है । साधारण मनुष्य के लिए सांसारिक सुख भोग से चित्त को रोकना अत्यन्त कठिन है । प्रत्येक मनुष्य संसार से मुख मोड़कर ज्ञान प्राप्ति के लिए

आचार्य बल्लभ तथा अन्य बैष्णव आचार्यों ने भी प्रवृत्ति-मार्गीय -भक्ति-भावना को ही मोक्ष का सरलतम साधन स्वीकार किया है। गोपियां अनन्य भक्त के रूप में गृहीत हुई हैं। भक्तिकालीन भ्रमरगीतों में निवृत्ति तथा प्रवृत्ति मार्ग की टक्कर है।

सूरदास,नंददास आदि भक्तिकालीन कवियों के भ्रमरगीतों में उद्धव के मुख से जो ज्ञान एवं योग साधना का उपदेश दिया गया है उसमें तद्युगीन निर्गुणवादियों की विचारधारा की अनुगूंज है। उद्धव के ज्ञान सम्बंधी विचार भक्तिकालीन निर्गुण विचारधारा से युक्त हैं। उद्धव के अभिप्राय में संसार के दु:ख का मूल कारण अज्ञान है। तत्वज्ञान के बिना सुख दुर्लभ है -

"ज्ञान बिना कहुंवै सुख नाहीं ।।

(सूरसागर पद ४२२४)

परब्रह्म का स्वरूप समझाते हुए उद्धव जी कहते हैं कि परब्रह्म सांसारिक सम्बंध से रहित है। ब्रह्म के ज्ञान बिना मुक्ति संभव नहीं -

गोपी सुनहु हरि संदेश ।
कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावहु, त्रिगुन मिथ्या भेष ।।
मैं कहौं सो सत्य मानहुं, सगुन डारहु नाखि ।
पंच त्रय-गुण सकल देही, जगत ऐसौं भाषि ।।
ज्ञान बिनु नर-मुक्ति नाहीं, यह विषय संसार ।
रूप रेख, न नाम जल थल, बरन अबरन सार ।।
मातु पितु कोउ नाहिं नारी, जगत मिथ्या लाई ।
सूर सुख दु:ख नहीं जाकैं, भजौ ताकौं जाइ ।।

(सूरसागर पद ४३०३)

निरंतर श्रीकृष्ण के ही ध्यान में रहनेवाली गोपियां उद्धव के इस उपदेश से व्यथित हो जाती हैं। वे प्रतिक्षण प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती हैं। सगुण साकार श्रीकृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम है। अब निर्गुण ब्रह्म की साधना उनके लिए असंभव है -

ऊधौ मन न भए दस बीस ।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस ।।
(सूरसागर पद ४३४४)

भ्रमरगीत परंपरा में सुगनि प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । इस काव्य परंपरा में सूरदास के बाद नंददास का प्रमुख उल्लेखनीय स्थान है । उनके भंवरगीत के पूर्वभाग में ही निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान,कर्म, मोक्ष आदि की विस्तृत विवेचना मिलती है । उसका प्रारंभ ही गोपी-उद्धव संवाद के रूप में हुआ है । निर्गुण निराकार का खण्डन कर सगुण और साकार की प्रतिष्ठा की गई है । उद्धव निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं जो ज्योति स्वरूप परब्रह्म का उपदेश देते हैं -

वे तुम तैं नहिं दूर ग्यान की आंखिन देखौ ।
अखिल विश्व भर पूरि, ब्रह्म सब रूप विसेखौ ।।
लौह, दारु, पाषान में, जल थल मांहि अकास ।
सचर अचर बरतत सबै, ज्योति ब्रह्म परकास ।।
(भंवरगीत : नंददास ७)

उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का गोपियां प्रतिकार करती हैं । श्रीकृष्ण की सगुण लीलाओं के प्रति उनका अटूट विश्वास है -

जो मुख नाहिन हुतो, कहो किन माखन खायौ ?
पायन बिन गोसंग, कहो को बन बन धायौ ?
आंखिन में अंजन, दियौ, गोवर्धन दियौ हाथ ।
नंद जसोदा पूत हैं कुंवर कान्ह ब्रज नाथ ।
सखा सुनि स्याम के ।।
(भंवरगीत : नंददास १०)

नंददास की गोपियों ने दर्शन के उच्च स्तर पर पहुंचकर सशक्त तर्कों द्वारा ज्ञान का खंडन किया है । सूर की गोपियां ग्रामीण रूप लिए हुए हैं जो प्रत्यक्ष वाद-विवाद से दूर रहती हैं । जबकि नंददास की गोपियां दर्शन के जटिल सिद्धान्तों को समझनेवाली पूर्ण पंडिता हैं जिनमें नागरी नारियों की झलक मिलती है ।

नंददास की गोपियों ने अपने तर्कों द्वारा पुष्टिमार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। पुष्टिमार्ग के अनुसार रसरूप सगुण साकार श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं -

जोगी ज्योति भजै, भक्त निज रूपहि जानै ।
प्रेम पियूषो प्रगट स्याम सुन्दर उर आनै ।।
(भंवरगीत : नंददास १८)

अंततोगत्वा गोपियों की प्रेमाभक्ति के सामने उद्धव का ज्ञानगर्व विगलित हो जाता है। उद्धव की पराजय प्रतीतात्मक पराजय है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो गोपियों की विजय निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी संतो और योगियों पर शुद्धाद्वैतदर्शन और पुष्टिमार्ग की विजय है। इसके अतिरिक्त भ्रमरगीत काव्य में तत्कालीन समाज, उसके जीवनगत विविध उपकरण, भोजन, वस्त्रालंकार आदि का परिचय भी यत्र-तत्र मिल जाता है। गोकुल एवं मथुरा के माध्यम से क्रमशः ग्राम्य एवं नगर जीवन का चित्रण मिलता है। "बालक कृष्ण गांव थे। राजा कृष्ण नगर, राजधानी। अक्रूर ने गांव को धोखा दिया था। उद्धव गांव को ठगने आये थे।"[1] निम्नलिखित पंक्तियों में गांव और नगर की संस्कृति की टक्कर है -

षटरस व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं
ऊधौ नवनीत हूं स-प्रीति कहूं पावैं है
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानै सबै
साची कहौं के ते कहि लालन ठडावैं है।
रतन-सिंहासन विराजि पाकु सासन लौं
जग-चहु-पासनि तौं सासन चलावैं है
जाइ जमुना तट पै कोऊ वट छाहि माहि
पांसुरी उमाहि कबौं बांसुरी बजावैं हैं।

गोकुल भारतीय गांव का प्रतिनिधित्व करता है। गोकुल के माध्यम से

१- भ्रमरगीत : ग्राम बनाम नगर-, पृष्ठ १६, कल्पना-दिसम्बर १९७२

भारतीय ग्राम्य जीवन की प्रायः सभी विशेषताओं का चित्रण करने का अवसर भ्रमरगीत के कवियों को सहज ही प्राप्त हुआ है। हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं के भ्रमरगीत काव्य में सहजता और सरलता से युक्त ग्रामीण जीवन की झलक मिलती है। मथुरा स्थित श्रीकृष्ण का मन गोकुल की स्मृतियों को लेकर व्याकुल हो रहा है -

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं
हंस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजनि की छाहीं
वे सुरभी वह बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं
ग्वाल बाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं
यह मथुरा कंचन की नगरी मणि मुक्ताफल जाहीं
जबहि सुरति आवति वा सुख की जिय उमगति तन नाहीं।

इसीलिए उद्धव को गोपियों ने वे वस्तुएं दीं जो कृष्ण को प्रिय हैं -

कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिये
कोऊ गुंज-अंजली उमाहै प्रेम-आंसुरी
भाव भरी कोऊ लिये रुचिर सजावदही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पांसुरी
पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुखारी दई बांसुरी।

भ्रमरगीत काव्य में ग्राम्य जीवन की उद्दामता, खुलापन और चंचलता है। नगर जीवन के विरुद्ध भावावेश है। ग्राम-जीवन यानी सहजप्रेम-सहजानंद। कोई औपचारिकता नहीं। माता यशोदा को अपने प्यारे पुत्र की चिंता होती है - यहां वृन्दावन में मिश्री मिला नया उत्तम किस्म का मक्खन है। भला शहर में ऐसी ताजी चीज कहां मिलेगी। उन्हें लगता है कि शहर में कृष्ण भूखे रह जाते होंगे -

"यह जो नव नवनीत मिल्यो मिसरी अति उत्तम
भला सकै मिलि कहा सहर में सद याके सरम
रहै यही लालो अजहुं लालन यहि जब भोर
भूखो रहन न होई कहू मेरो माखन चोर।

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल का भ्रमरगीत काव्य अलंकरण और सजावट का काव्य है। रीतिकाल में स्थापत्य, संगीत चित्रादि ललित कलाओं का विकास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था। कला एवं वैभव के इस युग का पतन मुगल बादशाह शाहजहां की उत्तरावस्था से प्रारंभ हुआ। विश्वासघाती औरंगजेब ने पिता को बन्दी बनाकर तथा भाइयों का वधकर शासन हथिया लिया। उसके शासन में अत्याचार के कारण जनता में असंतोष बढ़ता गया। उसकी मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अनेक राजाओं ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। कालान्तर में इन राजाओं में विलासिता बढ़ती चली और सुरा सुन्दरी का मान भी बढ़ता गया।

सामन्तीय सामाजिक व्यवस्था के इस युग में एक ओर उच्च पदाधिकारी शासक वर्ग था जिसके जीवन में भौतिक साधन सामग्री की कोई कमी नहीं थी। उनका जीवन भोग और विलासिता से ग्रस्त था। दूसरा शोषित एवं दलित वर्ग था जिसका जीवन अभावग्रस्त था। धार्मिक संप्रदायों पर भी शासक वर्ग के वैभव और विलास का प्रभाव पड़ चुका था। शृंगारिकता के इस युग में कृष्ण के लोक रंजक रूप को ही अधिक महत्व दिया गया। श्रीकृष्ण और गोपियों के माध्यम से लौकिक प्रणय की उद्भावना होने लगी। राज्याश्रित कवियों को आश्रयदाता की रुचि के अनुकूल काव्य सृजन करना पड़ता था। कविता कामिनी के बाह्य शृंगार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अधिकांशत: नारी के स्थूल रूप का ही वर्णन किया गया। कवि अंतर्मुखी न होकर अधिकांश बहिर्मुखी बन गये थे। एक प्रकार से इस युग का काव्य श्रम-साध्य था जिसमें गीत-काव्य के स्थान पर कवित्त, सवैयों को को ही प्राय: अपनाया गया। कवि मतिराम, देव, भिखारीदास आदि के परिचय में हम इस प्रकार की रचनाओं के उदाहरण देख चुके हैं।

मुगल बादशाहों के समय में व्यापार के लिए आये हुए अंग्रेज भारतवासियों की फूट का लाभ उठाकर यहां धीरे धीरे शासक बन गये। 'फूट डालो और शासन करो' (डिवाइड एण्ड रूल) नीति को आधार बनाकर वे अपने पैर मजबूत करते गये। इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना और शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण भारतीय प्रजा में

राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव होने लगा । महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में खोई हुई स्वतंत्रता पुन: प्राप्त करने के लिए स्वातंत्र्य संग्राम शुरू हुआ । स्वाधीनता आंदोलनों को कुचल डालने की अंग्रेजों की नीति के बावजूद भी असंख्य नर-नारियों ने सत्याग्रह संग्राम में भाग लेना नहीं छोड़ा । कवियों कलाकारों का भी स्वाधीनता संग्राम में योगदान रहा है । आधुनिक युग के भ्रमरगीतकार कवि हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न श्यामसुन्दरलाल दक्षित आदि में आधुनिक युग के प्रभाव की चर्चा हम उनकी रचनाओं का परिचय देते हुए कर चुके हैं । अब यहां गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में युगीन प्रभाव किस प्रकार परिलक्षित होता है यह देखने का प्रयत्न करेंगे ।

गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में युगीन प्रभाव :

जैसा कि हम देख चुके हैं साहित्य रूपी सरिता में युगीन प्रवाह अवश्य दिखाई देता है । साहित्यकार की कलम समकालीन जीवनरंगों का स्पर्श करती हुई गतिमान होती है । गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में भी युगीन जीवन का प्रतिबिंब पद पद पर परिलक्षित होता है । समाज में प्रवर्तित रीति-रिवाज, रूढ़ियां, वस्त्राभूषण, आचार-विचार आदि का सहज परिचय मिलता है । श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था जहां व्यतीत हुई ऐसे गोकुल के ग्राम्यजीवन का वातावरण हिन्दी के कवि कवियों के समान ही गुजराती की प्राय: प्रत्येक भ्रमरगीता में चित्रित हुआ है । गोकुल के नंद, यशोदा, राधा, कृष्ण, गोपियां और ग्वाल आदि के चित्रण द्वारा भारतीय ग्राम्य जीवन की संस्कृति का सुघर चित्र पाठक के सामने उपस्थित होता है ।

भारतीय ग्राम्य जीवन प्राय: शांत और सुरम्य वातावरण से युक्त होता है । कृषि प्रधान इस देश के देहातों में कृषक परिवारों की संख्या का अधिक होना अत्यंत स्वाभाविक है । भ्रमरगीतों में चित्रित गोकुल एक आदर्श भारतीय गांव का मानो अन्यतम उदाहरण है । भारतीय संस्कृति के सम्यक् अध्ययन के लिए भ्रमरगीत काव्य में चित्रित गोकुल के ग्राम्य जीवन का परिचय निश्चय ही सहायक सिद्ध होता है । गोकुल के निवासी गोप और गोपियां भोलेभाले हैं । प्रकृति की गोद में पला उनका जीवन सहज और स्वाभाविक है । भ्रमरगीत काव्य के अध्ययन से लगता है कि गोकुल एक छोटा

देहात रहा होगा और मथुरा बड़ा नगर। इस प्रकार से भ्रमरगीत काव्य में ग्रामजीवन बनाम नगरजीवन की झलक क्रमशः गोकुल और मथुरा के माध्यम से मिलती है। ग्राम-जीवन यानी नैसर्गिक सहज स्वाभाविक मानवता का आगार। नगर जीवन यानी कदम-कदम पर कृत्रिमता और अनेक अस्वाभाविकताओं का व्यापार। हिन्दी एवं गुजराती दोनों के भ्रमरगीत काव्य में ग्राम्यजीवन और नगरजीवन का तुलनात्मक चित्र न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

कवि ब्रेहेदेव ने अपनी 'भ्रमरगीता' में गोकुल के ग्राम्यजीवन का सजीव चित्र अंकित किया है। इस काव्य में हरि के नाम का जाप करती प्रेम दीवानी गोपियों का हमें सहज परिचय मिलता है। गोकुल के निवासी सीधी सादी भाषा बोलनेवाले, सादी वेशभूषा धारण करनेवाले, स्नेह से पूर्ण सरस और सरल स्वभाव के लोग हैं। गोपालन उनके जीवन निर्वाह का प्रमुख साधन होने का परिचय भी मिलता है। गोपियों द्वारा प्रातःकाल में जल्दी उठकर दूध दोहन, दधि मंथन करना आदि गृहकार्य के सुरम्य दृश्यों का अंकन कलात्मक ढंग से मिलता है। ग्वालों का प्रातःकाल में गायें चराने वृन्दावन जाना, उनका प्रिय साथ बांसुरी होना आदि के प्रमाण भी मिलते हैं।[१]

प्रातःकालीन गोकुल बड़ा आकर्षक और रम्य लगता है। कवि सुन्दर सुत ने दधि मंथन करती हुई गोपियों का सजीव चित्र इन शब्दों में अंकित किया है -

"उद्योत कीधा दीपक मंदिर, गोविंदना गुण गाए ;
दधि मंथन प्रेमे करे, नेनी धूनि गगने जाए।
गृह-काज करतां कामनी, अहर्निश हरिनुं ध्यान ;
महीं वलोवे मानुनी, श्रीकृष्ण गुण गान।
खलके कंकण नाद नेवरे, झांझरनो झमकार :
कटि -मेखला किंकिणी बाजे, नूपुर घमकार।[२]

१- ब्रेहेदेव कृत भ्रमरगीता : कड़वुं २५

२- सुंदरसुत कृत भ्रमरगीता : कड़वुं १२"

मध्यकालीन गुजराती के लोकप्रिय कवि प्रेमानन्द ने भी प्रात:काल में दधि मंथन करती गोपियों का सजीव चित्र कलात्मक ढंग से उपस्थित किया है।

"करकंकण कटि मेखला, फांकरी घुघरी नाद ;
हरिगुण गातां भूषण वाजे, उपजे अमृत स्वाद ।
घमके घुघरी, चमके चुनड़ी, घूमे वलोणु घोर ;
नेतरुं ताणी, गुण बिखाणे, गाये नंदकिशोर ।[1]

"आतिथ्य भावना" जो कि भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग रहा है उसका भी परिचय भ्रमरगीत काव्य में मिलता है। उद्धव जी के गोकुलागमन के प्रसंग पर यह देखा जा सकता है। ग्रामीजन अतिथि के प्रति विशेष आदरभाव रखते हैं। घर पर आये हुए मेहमान का अच्छी तरह से स्वागत करना, उसके लिए रहने का समुचित प्रबन्ध करना, प्रेमपूर्वक भोजन कराना आदि इस आतिथ्य भावना की प्रमुख उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। नंददास की गोपियों ने अतिथि के रूप में उद्धव का स्वागत इस प्रकार किया है -

"अरधासन बैठाय और परिक्मा दीनी ।
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीनी ।।"[2]

कवि ध्रुव प्रीतम ने नंद यशोदा द्वारा उद्धव के स्वागत सत्कार का वर्णन इस प्रकार किया है -

"बडी रसोई कीधी, जसोदाए जुक्त शुं ;
भावेथी भोजन कर्युं, साकर ने दूध शुं ।

कवि विश्वनाथ जानी ने भी आदरपूर्वक उद्धव के स्वागत होने की बात कही है -

"उद्धवजीनो फाली हाथ, मंदिर तेडे सघलो साथ ।
कृतारथ माने कामिनी, भावसहित भोली भामिनी ।"[3]

१- प्रेमानंद कृत - भ्रमरगीता : कडवुं १२८
२- नंददास कृत : भंवरगीत : ४
३- विश्वनाथ जानी कृत प्रेमपचीसी : पद २१

प्रेमे पलंग बिछावी, बेठां बीउला करे ;
अन्यो-अन्य उद्धव नंद, लेह मुखमां धरे ।"[१]

आतिथ्य भावना का अति सुन्दर उन्मेष गिरधर के काव्य में देखा जा सकता है -

"आनन्द पाम्या नंदजी, भेट्या उद्धव ने हरखे करी ;
आसन आपी कर्युं पूजन, जाषो पधार्या श्रीहरि ।"[२]

मध्यकालीन गुजरात के ग्राम्य जीवन में लोकनृत्य 'रास' का विशेष प्रचलन रहा हो ऐसा लगता है । स्त्री पुरुषों के ये रास शरद की धवल रात्रि में या पुर्णिमा के चंद्र-प्रकाश में खेले जाते थे -

"सोल-कला-शीश शरद निशा, तिणें अमृत-रस पाओं ।"[३]

भाग्य पर प्रबल विश्वास रखकर चलने की मनोवृत्ति भी भ्रमरगीताओं में दिखाई देती है । पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और कर्मफल के प्रति विश्वास के भी दर्शन होते हैं । कवि ब्रेहेदेव ने गोपियों के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम को पूर्वजन्म की प्रीति कहा है -

"के प्रीत्य विहिला भाव-तणी, ते आज क्यम पाटी थशि ?"[४]

नगर जीवन में हाथी, घोड़े और रथ का प्रयोग सवारी के लिए प्रचलित था । शहर के लोगों का भोजन मिष्ठान्न आदि से वैविध्यपूर्ण हुआ करता था । जबकि ग्रामजनों का भोजन सादा और सात्विक हुआ करता था । प्रेमानन्द ने मथुरा में रहकर भी श्रीकृष्ण को किस प्रकार गोकुल की स्मृति बनी रहती थी यह बताते हुए इस पर प्रकाश डाला है -

---

१- प्रीतमकृत सरसगीता : विश्राम २

२- कवि गिरधर कृत उद्धवगोपी संवाद : अध्याय २३

३- ब्रेहेदेव कृत भ्रमरगीता पद ६

४- वही, कडवुं : २१

"मुने मथुरानुं राज गमतुं नथी, वाहाला मुने गोकुलियानो वास हो ।
देवकी नुं खटरस अन्न भावे नहीं, वाहाली मुने व्रजनारीनी छाश,हो ।
गज,रथ,अश्व हो मुने अलखामणा, गमे मुने गोकुलियानी गाय हो ।"[१]

नरसिंह महेता ने गोपियों के माध्यम से स्वस्थ, सुन्दर ग्राम्य नारियों का आलेखन किया है । प्रात:काल में ग्राम्य नारियों का पानी के घाट पर जल भरने के लिए जाना दैनिक जीवन का उपक्रम होता है -

"प्रभाते उठीने रे, गोपीओ संचरी रे, करवा जमनाजी ने जुहार ।
वेणी डोले रे, जेम नागणी रे, पाए भांभरनो भमकार ।"[२]

`रसिकगीता` के रचयिता कवि भीम ने निर्गुण सगुण के विवाद का चित्रण करते हुए योग को उधार `दोकडा` कहा है । इस पद से ज्ञात होता है कि उस समय के सिक्कों में `दोकड़ा` सबसे छोटा सिक्का रहा होगा ।[3] युद्ध-भूमि में जाने के बाद पराजित होकर घर लौटना लज्जा की बात मानी जाती थी । ऐसे मनुष्य का जीवित रहना व्यर्थ माना जाता था -

"प्रीत तरवार बांधी रे, पग रे पाछा करे ;
ते थे मरण भलुं रे, जीवीने शुं करे ।"[४]

स्त्रियों का जीवन अनेक मर्यादाओं से बंधा हुआ था । पुरुष की तुलना में उन्हें बहुत कम स्वतन्त्रता प्राप्त थी । लोकनिन्दा बुरी समझी जाती थी । पति तथा कुल की प्रतिष्ठा का ध्यान रखना आवश्यक माना जाता था । विवशता के क्षणों में किसी एकान्त कोने में आंसू बहाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं होता था :-

---

१- प्रेमानंद कृत दशमस्कंध : अध्याय ४६ : कडवुं १२४

२- नरसिंह कृत : गोपी सन्देश पद-१

३- "जोग तो एवो उद्धव । रे, उधार रोकडो" भीम कृत रसिकगीता : ४१

४- वही, ६७

"अम-सुं लोक बोलतां मुंडुं रे, वेणे वगोइनी ;

उद्धव । अमो सांभळी काने रे, रहेतां चूप राइणी ।"[1]

शहर के लोगों में सोना, चांदी एवं मणि-माणिक्य का प्रयोग होता था जबकि ग्राम्य-जीवन में बहुमूल्य आभूषणों के स्थान पर मयूरपिच्छ का प्रयोग द्रष्टव्य है -

"जोनूं रूपूं मणि मुगताफळ, मेहेल्यां मन उतारी ;

मोरपीछ-शुं प्रेम घणो, ने गळे गुंजा रह्यो धारी ।"[2]

गायों के प्रति प्रेम और श्रद्धा के दर्शन होते हैं। मानव के समान ही उनके नाम रखे जाते थे। और उन्हें नाम से पुकारा जाता था। इस पर से कहा जा सकता है कि उस समय के जीवन में गाय का महत्वपूर्ण स्थान था। कवि दयाराम ने गोकुल का चित्रण करते हुए इस प्रकार लिखा है -

"नाम लई लई वत्स गोना, ग्वाल वो गावे त्याहां ;

वेणुवाद विशाळ वाजे, मनोहर सुख ए घोषमांह ।"[3]

मध्यकालीन गुजराती भ्रमरगीत काव्य में स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उस समय किसी का विवाह तोड़ना, सती साध्वी स्त्री को कलंकित कहना, कोमल पौधों को नुकसान पहुंचाना, सरोवर का पानी निकाल देना, किसी को धोखा देना, ब्राह्मण का अनादर करना, कन्या, गाय और जमीन को बेचना आदि कृत्य समाज में निंदनीय माने जाते थे -

"उद्धव प्रश्न करजो विचारी आप में शां शां पूर्वे कीधां पाप ।

में मळतां मांड्यां होशे वेविशाळ, में चडाव्यां होशे साधवीने आळ ।

बाळ वृक्ष तणी शुं भांजी डाळ, में शुं फोडी होशे सरोवरपाळ ।

में पमाड्युं होशे विश्वास देई मृत्यु, में लोमी हशे ब्राह्मण नी वृत्ति ।"[4]

सुन्दरसुत की भ्रमरगीता में 'हरडे' के प्रयोग से रोग नष्ट होने के आयुर्वेदिक निदान का उल्लेख हुआ है :-

---

१- भीमकृत - रसिकगीता : १२

२- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथजानी पद ५

३- प्रेमरसगीता : दयाराम पद :३

४- दशम स्कंध : प्रेमानंद कडुं : १२६

"बाई तमो ज्यम हरडे सेवी, शमावे सहु रोग ;
तेम तम्यो सेवा कृष्णजी, ने पाम्यां सुख संजोग ।"[१]

कवि प्रीतम ने प्रात:कालीन गोकुल का वातावरण चित्रित करते हुए गोपियों के मुख से भैरवी,सारंग आदि शास्त्रीय गीत गाने की बात कही है । इससे निष्कर्ष निकलता है कि मध्यकालीन जन-जीवन में संगीत प्रचुर प्रचार था -

"मही वलोवा लागी, सर्वे सुन्दरी ;
गोपी गुणगान करे, रस भावे भरी ।
राग सारंग गाये भैरवी बीभास मां
कोकिला कंठ पूरे सुन्दर अभिलाष मां ।।"[२]

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि गुजराती भ्रमरगीत काव्य में युगीन रीतिरिवाज, रूढ़ियां, ग्राम्य एवं नागरिक वातावरण, स्थापत्य, वेशभूषा, आभूषण और संगीत आदि का परिचय प्राप्त होता है । तत्कालीन समाज के धनिक एवं गरीब दोनों वर्गों की विशेषताओं का ज्ञान होता है । इस प्रकार भ्रमरगीत काव्य के माध्यम से उस युग के इतिहास को परखा जा सकता है । हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में भारतीय संस्कृति विशेषत: ग्राम्य जीवन की विशेषताओं का सुन्दर आलेखन हुआ है ।

१- सुन्दरसुत कृत भ्रमरगीता : कडवुं ४१

२- कवि प्रीतम कृत सरसगीता : विश्राम ३